Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

सांख्यदर्शन में दुःखत्रय एवं कैवल्य की अवधारणा : एक समीक्षात्मक अध्ययन

उषा खत्री

शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक

सारांश

भारतीय दार्शनिक परम्परा का मूल प्रयोजन मानव जीवन में व्याप्त दुःखों की यथार्थ पहचान कर उनकी आत्यन्तिक निवृत्ति के उपायों का प्रतिपादन करना है। भारतीय आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों में दुःख, बन्धन तथा मोक्ष के सम्बन्ध में विविध मत प्रतिपादित किए गए हैं, तथापि सांख्यदर्शन इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि यह मानव जीवन की मूल समस्या के रूप में दुःख को स्वीकार करते हुए उसके स्वरूप, कारण एवं निवारण के उपायों का अत्यन्त क्रमबद्ध, तार्किक तथा वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करता है। ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिका के प्रथम कारिका में उल्लिखित "दुःखत्रयाभिघात" का सिद्धान्त सांख्यदर्शन के सम्पूर्ण तात्त्विक चिन्तन की आधारभूमि है। सांख्य के अनुसार आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक दुःखों से पीड़ित मानव स्वाभाविक रूप से ऐसे साधन की खोज करता है, जो उसे समस्त क्लेशों से स्थायी मुक्ति प्रदान कर सके। सांख्यदर्शन इस समस्या का समाधान पुरुष एवं प्रकृति के यथार्थ विवेकज्ञान में निहित मानता है।

प्रस्तुत शोधपत्र में सांख्यदर्शन में प्रतिपादित दुःखत्रय की अवधारणा, दुःख के मूल कारणों, अविवेक, त्रिगुणात्मक प्रकृति, पुरुष–प्रकृति सम्बन्ध, विवेकख्याति तथा कैवल्य की अवधारणा का समीक्षात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। साथ ही वर्तमान समय में बढ़ते मानसिक तनाव, अस्तित्वगत संकट तथा मूल्यहीनता के परिप्रेक्ष्य में सांख्यदर्शन की शिक्षाओं की समकालीन प्रासंगिकता पर भी विचार किया गया है। अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि सांख्यदर्शन केवल एक दार्शनिक तन्त्र न होकर मानव जीवन को आन्तरिक संतुलन, आत्मबोध एवं स्थायी शान्ति प्रदान करने वाला व्यावहारिक जीवन–दर्शन भी है।[1]

प्रमुख शब्द

सांख्यदर्शन, दुःखत्रय, विवेकख्याति, पुरुष, प्रकृति, कैवल्य, मोक्ष, अविवेक, त्रिगुण, सांख्यकारिका।

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन की विशिष्टता इस तथ्य में निहित है कि उसका लक्ष्य केवल बौद्धिक जिज्ञासा की तुष्टि अथवा तात्त्विक समस्याओं का सैद्धान्तिक समाधान प्रस्तुत करना नहीं है, अपितु मानव जीवन के वास्तविक संकटों को समझते हुए उन्हें दूर करने का व्यावहारिक मार्ग प्रशस्त

[1] डॉ० उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2011, पृ. 214

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

करना भी है। भारतीय मनीषियों ने जीवन को सुख एवं दुःख, आशा एवं निराशा, बन्धन एवं मुक्ति, जन्म एवं मृत्यु के सतत् संघर्ष के रूप में अनुभव किया और इसी अनुभव के आधार पर ऐसे दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जो मनुष्य को दुःखमुक्त जीवन की दिशा प्रदान कर सकें।[2]

भारतीय दार्शनिक परम्परा में न्याय, वैशेषिक, योग, वेदान्त, बौद्ध तथा जैन दर्शन सभी ने दुःख की समस्या पर विचार किया है, किन्तु सांख्यदर्शन का स्थान इस सन्दर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सांख्यदर्शन मानव जीवन के समस्त प्रयासों का मूल प्रेरक तत्व दुःख की अनुभूति को स्वीकार करता है तथा यह प्रतिपादित करता है कि दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है।[3]

ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिका का प्रथम कारिका इस तथ्य को अत्यन्त स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करता है।

''दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।
दृष्टे सापार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्□**[4]

अर्थात् दुःखत्रय के आघात से पीड़ित मनुष्य में ऐसे साधन की जिज्ञासा उत्पन्न होती है, जो इन दुःखों की पूर्ण निवृत्ति करने में समर्थ हो। यदि यह कहा जाए कि लौकिक उपाय ही पर्याप्त हैं, तो यह उचित नहीं है, क्योंकि वे दुःखों की न तो पूर्णतः और न ही स्थायी रूप से निवृत्ति कर सकते हैं।

सांख्यदर्शन के अनुसार मनुष्य का वास्तविक स्वरूप शुद्ध, चेतन, निर्लेप एवं साक्षी पुरुष है, किन्तु अविवेकवश वह स्वयं को प्रकृति, उसके गुणों तथा विकारों के साथ अभिन्न मान लेता है। यही मिथ्याज्ञान समस्त बन्धनों तथा दुःखों का मूल कारण है। जब साधक पुरुष और प्रकृति के भेद का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह कैवल्य की अवस्था को प्राप्त होता है, जो सांख्यदर्शन में मोक्ष का पर्याय है।[5]

इस प्रकार सांख्यदर्शन में दुःखत्रय की अवधारणा केवल मानवीय पीड़ा का वर्णन मात्र नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन के आध्यात्मिक उत्कर्ष एवं परम पुरुषार्थ की प्राप्ति की दिशा में एक सुव्यवस्थित दार्शनिक साधना–पद्धति का प्रतिपादन भी है। वर्तमान समय में जब मानव मानसिक तनाव, अस्तित्वगत संकट तथा मूल्यगत विघटन से जूझ रहा है, तब सांख्यदर्शन की यह शिक्षाएँ पुनः अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होती हैं।[6]

---

[2] डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग– 1, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2012, पृ. 47
[3] आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2016, पृ. 182
[4] ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, कारिका– 1, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 2018, पृ. 3
[5] वाचस्पति मिश्र, तत्त्वकौमुदी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2017, पृ. 11
[6] डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग– 2, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2013, पृ. 287

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

1. सांख्यदर्शन का स्वरूप एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि

भारतीय दार्शनिक परम्परा में सांख्यदर्शन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह भारतीय दर्शन के प्राचीनतम, वैज्ञानिक तथा सुव्यवस्थित तात्त्विक तन्त्रों में से एक माना जाता है। सांख्यदर्शन का प्रमुख उद्देश्य मानव जीवन में व्याप्त दुःखों के मूल कारणों का अन्वेषण कर उनकी आत्यन्तिक निवृत्ति का उपाय प्रस्तुत करना है। इस दर्शन में जगत, जीव, प्रकृति, पुरुष तथा मोक्ष के विषय में अत्यन्त तार्किक एवं विश्लेषणात्मक विवेचन प्राप्त होता है।[7]

सांख्यदर्शन को भारतीय चिन्तन परम्परा में ज्ञानप्रधान दर्शन के रूप में स्वीकार किया गया है। यह दर्शन कर्मकाण्डीय प्रवृत्तियों की अपेक्षा तत्त्वज्ञान को अधिक महत्त्व प्रदान करता है। सांख्य का मत है कि मनुष्य के समस्त क्लेशों, बन्धनों एवं दुःखों का मूल कारण अविवेक अथवा अज्ञान है। जब तक पुरुष स्वयं को प्रकृति के गुणों, विकारों तथा मानसिक अवस्थाओं के साथ अभिन्न मानता रहता है, तब तक वह जन्म–मरण, सुख–दुःख तथा आसक्ति के चक्र में आबद्ध रहता है।[8]

सांख्यदर्शन की प्राचीनता का संकेत महाभारत, भगवद्गीता, मनुस्मृति तथा उपनिषदों में प्राप्त होता है। भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने सांख्य और योग दोनों को मोक्षप्रद मार्ग के रूप में स्वीकार करते हुए कहा है–

''लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्□**[9]

इस श्लोक से स्पष्ट है कि सांख्यदर्शन ज्ञानमार्ग का प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ ज्ञान का अभिप्राय केवल शास्त्रीय पाण्डित्य नहीं, बल्कि पुरुष एवं प्रकृति के यथार्थ स्वरूप का प्रत्यक्ष विवेकज्ञान है।[10]

1.1 सांख्य शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ

'सांख्य' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राचीन आचार्यों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किए हैं। सामान्यतः 'संख्या' शब्द से सांख्य की व्युत्पत्ति मानी जाती है, जिसका अर्थ हैकृगणना करना अथवा तत्त्वों का सम्यक् विवेचन करना। सांख्यदर्शन में पञ्चविंशति तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया है, अतः इसे 'सांख्य' नाम प्राप्त हुआ।[11]

---

[7] डॉ० उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन का इतिहास, हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2011, पृ. 221
[8] भगवद्गीता, 3.3
[9] ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, कारिकाद्3, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 2018, पृ. 8
[10] स्पति मिश्र, तत्त्वकौमुदी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2017, पृ. 16
[11] विज्ञानभिक्षु, सांख्यप्रवचनभाष्यम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 2016, पृ. 21

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

दूसरे मत के अनुसार 'सम्यक् ख्यातिः सांख्यम्' अर्थात् वह दर्शन जो पुरुष एवं प्रकृति के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान प्रदान करे, वही सांख्य है। वाचस्पति मिश्र ने तत्त्वकौमुदी में सांख्य को विवेकख्याति का दर्शन कहा है।[12]

आचार्य विज्ञानभिक्षु के अनुसार सांख्य शब्द का आशय उस तत्त्वज्ञान से है, जिसके द्वारा पुरुष प्रकृति के बन्धनों से मुक्त होकर अपने शुद्ध चौतन्यस्वरूप का अनुभव करता है। इस प्रकार सांख्य केवल तत्त्वों की गणना नहीं, अपितु मोक्षमार्ग का दार्शनिक प्रतिपादन भी है।[13]

1.2 सांख्यदर्शन का उद्भव एवं विकास

सांख्यदर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल माने जाते हैं। भारतीय परम्परा में कपिल मुनि को महान दार्शनिक, योगी तथा तत्त्वचिन्तक के रूप में स्मरण किया जाता है। भागवतपुराण में उन्हें भगवान विष्णु का अंशावतार कहा गया है।

यद्यपि महर्षि कपिल द्वारा रचित मूल सांख्यसूत्र वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं, तथापि ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिका सांख्यदर्शन का सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसके अतिरिक्त तत्त्वसमास, युक्तिदीपिका, तत्त्वकौमुदी, सांख्यप्रवचनभाष्य तथा सांख्यचन्द्रिका आदि ग्रन्थ भी सांख्य परम्परा के अध्ययन में अत्यन्त उपयोगी हैं।

सांख्यदर्शन का प्रभाव भारतीय चिन्तन परम्परा के अनेक दर्शनों पर दृष्टिगोचर होता है। विशेषतः योगदर्शन ने सांख्य के तत्त्वमीमांसात्मक आधार को स्वीकार करते हुए साधना–पक्ष का विकास किया। इसीलिए योगदर्शन को अनेक विद्वान 'सेश्वर सांख्य' तथा सांख्यदर्शन को 'निरीश्वर सांख्य' के रूप में अभिहित करते हैं।[14]

1.3 महर्षि कपिल का दार्शनिक अवदान

भारतीय दार्शनिक परम्परा में महर्षि कपिल का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण है। उन्हें सांख्यदर्शन का आद्य प्रवर्तक, महान तत्त्वदर्शी तथा मानव जीवन की मूल समस्याओं के सूक्ष्म विश्लेषक के रूप में स्मरण किया जाता है। भारतीय मनीषा ने महर्षि कपिल को केवल एक दार्शनिक ही नहीं, बल्कि ऐसे महामनीषी के रूप में स्वीकार किया है जिन्होंने मानव जीवन में व्याप्त दुःख, बन्धन तथा मोह के मूल कारणों की खोज कर उनकी निवृत्ति का तात्त्विक मार्ग प्रस्तुत किया।[15]

भागवतपुराण में महर्षि कपिल को भगवान विष्णु का अंशावतार माना गया है। उनकी माता देवहूति को प्रदत्त उपदेशों में सांख्य के अनेक तात्त्विक सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्राप्त होता

---

[12] श्रीमद्भागवत महापुराण, तृतीय स्कन्ध, अध्याय 24

[13] आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2016, पृ. 191

[14] सांख्यकारिका, कारिका– 1

[15] डॉ० चन्द्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन : आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2015, पृ. 154

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

है। कपिल का सांख्य मूलतः अनुभवप्रधान तथा विवेकमूलक दर्शन है, जिसका उद्देश्य साधक को पुरुष और प्रकृति के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्रदान करना है।[16]

महर्षि कपिल ने यह प्रतिपादित किया कि संसार में अनुभव होने वाले समस्त सुख–दुःख, राग–द्वेष, जन्म–मरण तथा परिवर्तन प्रकृति के क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। पुरुष इन समस्त अवस्थाओं का साक्षी मात्र है। किन्तु अविवेक के कारण पुरुष स्वयं को प्रकृति के साथ अभिन्न मान लेता है और इसी भ्रान्ति के कारण दुःखों का अनुभव करता है। अतः विवेकख्याति ही समस्त दुःखों के निवारण का एकमात्र साधन है।

कपिल का यह योगदान भारतीय दर्शन के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उन्होंने मोक्ष को किसी बाह्य सत्ता की कृपा पर आधारित न मानकर ज्ञानजन्य अवस्था के रूप में स्वीकार किया। उनके अनुसार मुक्ति कोई नवीन उपलब्धि नहीं, बल्कि पुरुष के वास्तविक स्वरूप का पुनः स्मरण है।[17]

1.4 सांख्यदर्शन के प्रमुख ग्रन्थ

सांख्यदर्शन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन एवं समृद्ध है। यद्यपि महर्षि कपिल द्वारा प्रणीत मूल सांख्यसूत्र वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं, तथापि सांख्य साहित्य की अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियाँ आज भी उपलब्ध हैं, जिनके आधार पर सांख्यदर्शन के सिद्धान्तों का व्यवस्थित अध्ययन किया जा सकता है। सांख्य परम्परा का सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिका है। यह ग्रन्थ लगभग सत्तर कारिकाओं में सांख्य के समस्त सिद्धान्तों का संक्षिप्त किन्तु अत्यन्त सारगर्भित प्रतिपादन करता है। दुःखत्रय, तत्त्वमीमांसा, पुरुष–प्रकृति सम्बन्ध, त्रिगुण, विवेकख्याति तथा कैवल्य की अवधारणाओं का सर्वप्रथम व्यवस्थित विवेचन इसी ग्रन्थ में प्राप्त होता है। वाचस्पति मिश्र द्वारा रचित तत्त्वकौमुदी सांख्यकारिका की प्रसिद्ध टीका है। इसमें सांख्य सिद्धान्तों की दार्शनिक व्याख्या अत्यन्त प्रौढ़ शैली में की गई है। विज्ञानभिक्षु का सांख्यप्रवचनभाष्य तथा सांख्यसार भी सांख्यदर्शन के अध्ययन में विशेष महत्त्व रखते हैं।

इसके अतिरिक्त युक्तिदीपिका, जयमंगला, माठरवृत्ति तथा सांख्यचन्द्रिका जैसी टीकाएँ सांख्यदर्शन की व्याख्यात्मक परम्परा को समृद्ध बनाती हैं। इन ग्रन्थों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सांख्यदर्शन केवल तत्त्वों की गणना करने वाला दर्शन नहीं है, बल्कि मानव जीवन के आध्यात्मिक उत्थान का एक गम्भीर दार्शनिक तन्त्र है।[18]

2. सांख्यदर्शन में दुःखत्रय की अवधारणा

सांख्यदर्शन का प्रारम्भ ही दुःख की समस्या से होता है। भारतीय दर्शन के अधिकांश दर्शनों में दुःख को मानव जीवन की एक अनिवार्य अनुभूति माना गया है, किन्तु सांख्यदर्शन इसे

---

[16] डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग– 2, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2013, पृ. 291

[17] श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध 3, अध्याय 25

[18] वाचस्पति मिश्र, तत्त्वकौमुदी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2017, पृ. 24

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

अपने सम्पूर्ण तात्त्विक चिन्तन का मूलाधार स्वीकार करता है। ईश्वरकृष्ण ने स्पष्ट रूप से कहा है–

''दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।
दृष्टे सापार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्□''[19]

इस कारिका का अभिप्राय यह है कि जब मनुष्य त्रिविध दुःखों से संतप्त होता है, तब उसके अन्तःकरण में ऐसे उपाय की खोज करने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है, जो इन दुःखों का स्थायी एवं आत्यन्तिक निवारण करने में समर्थ हो। लौकिक साधन दुःखों की अस्थायी निवृत्ति तो कर सकते हैं, किन्तु वे दुःखों का पूर्ण उन्मूलन नहीं कर सकते। अतः तत्त्वज्ञान की आवश्यकता अनिवार्य हो जाती है।[20] सांख्यदर्शन में दुःखों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया हैकृआध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक। यह वर्गीकरण सांख्य की मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक सूक्ष्मता का परिचायक है, क्योंकि इसके माध्यम से मानव जीवन में अनुभव होने वाली लगभग सभी प्रकार की पीड़ाओं को समाहित कर लिया गया है।

2.1 दुःखत्रय का स्वरूप

सांख्यदर्शन में दुःख की समस्या को अत्यन्त व्यापक एवं गम्भीर दृष्टि से देखा गया है। सांख्याचार्यों के अनुसार संसार में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो किसी न किसी प्रकार के दुःख से प्रभावित न हो। सुख की अनुभूति क्षणिक, परिवर्तनशील तथा परिस्थितिजन्य होती है, जबकि दुःख मनुष्य के अस्तित्व के साथ प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध अनुभव है। यही कारण है कि सांख्यदर्शन ने दुःख को दार्शनिक चिन्तन का प्रारम्भिक आधार स्वीकार किया है।

ईश्वरकृष्ण के अनुसार मनुष्य जिन दुःखों का अनुभव करता है, उन्हें मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता हैकृआध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक। यह वर्गीकरण केवल दार्शनिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।[21]

(क) आध्यात्मिक दुःख

आध्यात्मिक दुःख का तात्पर्य उन पीड़ाओं से है जो शरीर अथवा अन्तःकरण से उत्पन्न होती हैं। सांख्यदर्शन में अन्तःकरण के अन्तर्गत मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार को सम्मिलित किया गया है। शरीरगत रोग, ज्वर, पीड़ा, शारीरिक दुर्बलता, वृद्धावस्था तथा इन्द्रियजन्य विकार आध्यात्मिक दुःख की कोटि में आते हैं। इसी प्रकार शोक, भय, चिन्ता, मोह, ईर्ष्या, असन्तोष, क्रोध, अवसाद तथा मानसिक अस्थिरता भी इसी श्रेणी में परिगणित हैं।[22]

---

[19] डॉ. चन्द्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन : आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2015, पृ. 161

[20] बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2016, पृ. 194

[21] ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, कारिका 1–72

[22] विज्ञानभिक्षु, सांख्यप्रवचनभाष्यम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 2016, पृ. 32

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

सांख्यदर्शन का मत है कि मनुष्य की अधिकांश समस्याओं का मूल कारण उसके अन्तःकरण की अस्थिरता है। जब मनुष्य स्वयं को शरीर अथवा मन के साथ अभिन्न मानने लगता है, तब वह सुख–दुःख, मान–अपमान तथा राग–द्वेष के चक्र में फँस जाता है। पुरुष की वास्तविक सत्ता इन सभी अवस्थाओं से परे है, किन्तु अविवेक के कारण वह स्वयं को इनसे सम्बद्ध अनुभव करता है।[23]

वर्तमान युग में मानसिक तनाव, अवसाद, असुरक्षा तथा अस्तित्वगत संकट के बढ़ते हुए स्वरूप को सांख्यदर्शन के आलोक में आध्यात्मिक दुःख की आधुनिक अभिव्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है। सांख्य का विवेकज्ञान इन समस्याओं के समाधान हेतु एक प्रभावी दार्शनिक आधार प्रदान करता है।[24]

(ख) आधिभौतिक दुःख

आधिभौतिक दुःख वे दुःख हैं जो बाह्य जगत् अथवा अन्य प्राणियों के सम्पर्क से उत्पन्न होते हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है तथा उसका जीवन अन्य व्यक्तियों, पशु–पक्षियों तथा भौतिक वस्तुओं से निरन्तर सम्बद्ध रहता है। इस सम्बन्ध में उत्पन्न संघर्ष, हिंसा, शोषण, वैमनस्य, शत्रुता, दुर्घटनाएँ तथा अन्य बाह्य व्यवधान आधिभौतिक दुःख की श्रेणी में आते हैं।

प्राचीन भारतीय समाज में हिंसक पशुओं का भय, युद्ध, अकाल तथा सामाजिक असुरक्षा को आधिभौतिक दुःख माना जाता था। आधुनिक समाज में पारिवारिक विघटन, सामाजिक असमानता, आर्थिक संकट, प्रतिस्पर्धा, बेरोजगारी तथा सामाजिक तनाव इसी प्रकार के दुःखों के आधुनिक रूप हैं। सांख्यदर्शन इन दुःखों का स्थायी समाधान बाह्य परिस्थितियों के परिवर्तन में नहीं, बल्कि साधक के अन्तर्मन में उत्पन्न विवेकख्याति में देखता है। विवेकयुक्त साधक संसार के व्यवहार में संलग्न रहते हुए भी अपने आन्तरिक संतुलन को अक्षुण्ण बनाए रख सकता है।

(ग) आधिदैविक दुःख

आधिदैविक दुःख वे हैं जो मनुष्य के नियन्त्रण से परे प्राकृतिक अथवा अदृष्ट कारणों से उत्पन्न होते हैं। भूकम्प, बाढ़, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारी, अत्यधिक शीत, अत्यधिक ताप तथा अन्य प्राकृतिक आपदाएँ इस श्रेणी में सम्मिलित की जाती हैं। प्राचीन आचार्यों ने ग्रह–नक्षत्रों के प्रभाव, दैवयोग तथा अदृष्ट कर्मों के परिणामों को भी इसी श्रेणी में स्वीकार किया है।[25]

यद्यपि सांख्यदर्शन ईश्वर को स्वतंत्र सृष्टिकर्ता के रूप में स्वीकार नहीं करता, तथापि वह यह मानता है कि प्रकृति के गुणों एवं विकारों के विविध संयोगों से उत्पन्न अनेक परिस्थितियाँ

---

[23] डॉ. उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन का इतिहास, लखनऊ, 2011, पृ. 229

[24] वाचस्पति मिश्र, तत्त्वकौमुदी, पृ. 27

[25] डॉ. राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग–2, पृ. 243

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

मनुष्य के लिए दुःख का कारण बनती हैं। मनुष्य इन परिस्थितियों पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित नहीं कर सकता, किन्तु विवेकख्याति के माध्यम से उनके प्रति अपनी दृष्टि को परिवर्तित कर सकता है।[26]

आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी प्राकृतिक आपदाएँ, वैश्विक महामारी, जलवायु परिवर्तन तथा पर्यावरणीय असन्तुलन मनुष्य को यह स्मरण कराते हैं कि बाह्य जगत् पर उसका नियन्त्रण सीमित है। सांख्यदर्शन की दृष्टि में इन परिस्थितियों के मध्य भी आन्तरिक शान्ति एवं आत्मस्थितप्रज्ञता का विकास सम्भव है।[27]

इस प्रकार सांख्यदर्शन में प्रतिपादित दुःखत्रय की अवधारणा मानव जीवन की समस्त पीड़ाओं का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करती है। यह विश्लेषण केवल सैद्धान्तिक नहीं है, बल्कि मानव अस्तित्व की गहन अनुभूतियों से सम्बद्ध है। यही कारण है कि सांख्यदर्शन आज भी मानसिक स्वास्थ्य, अस्तित्ववादी संकट तथा आधुनिक जीवन की जटिलताओं के अध्ययन में अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होता है।[28]

2.2 दुःख के कारण : सांख्यदर्शन की दार्शनिक दृष्टि

सांख्यदर्शन केवल दुःख के स्वरूप का विश्लेषण प्रस्तुत करने तक सीमित नहीं रहता, अपितु वह अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ दुःख के मूल कारणों का भी विवेचन करता है। सांख्याचार्यों के मतानुसार दुःख बाह्य परिस्थितियों की देन मात्र नहीं है, बल्कि उसका वास्तविक कारण मनुष्य की मिथ्यादृष्टि, अविवेक तथा पुरुष और प्रकृति के परस्पर सम्बन्ध के विषय में उत्पन्न अज्ञान है। सांख्यदर्शन का सम्पूर्ण मोक्षशास्त्र इसी सिद्धान्त पर आधारित है कि जब तक पुरुष अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचानता, तब तक वह प्रकृति के गुणों से आबद्ध होकर दुःख का अनुभव करता रहता है।

(क) अविवेक : दुःख का मूल कारण

सांख्यदर्शन में अविवेक को समस्त दुःखों का मूल कारण माना गया है। अविवेक का तात्पर्य पुरुष और प्रकृति के वास्तविक स्वरूप के विषय में यथार्थ ज्ञान के अभाव से है। पुरुष स्वभावतः शुद्ध, चौतन्यमय, निर्लेप, अकर्ता तथा अभोक्ता है, जबकि प्रकृति जड़, त्रिगुणात्मक तथा समस्त विकारों की जननी है। किन्तु अज्ञानवश पुरुष स्वयं को प्रकृति के धर्मों के साथ अभिन्न मान लेता है।[29]

वाचस्पति मिश्र लिखते हैं कि जिस प्रकार स्वच्छ स्फटिक समीपस्थ लाल पुष्प के प्रभाव से लाल प्रतीत होने लगता है, उसी प्रकार पुरुष भी प्रकृति के संसर्ग के कारण स्वयं को सुखी,

[26] ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, कारिकादृ1, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 2018, पृ. 3
[27] वाचस्पति मिश्र, तत्त्वकौमुदी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2017, पृ. 31
[28] विज्ञानभिक्षु, सांख्यप्रवचनभाष्यम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 2016, पृ. 45
[29] डॉ. उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन का इतिहास, हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2011, पृ. 235

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

दुःखी, कर्ता तथा भोक्ता समझने लगता है। वस्तुतः पुरुष इन सभी अवस्थाओं से सर्वथा परे है।[30] अविवेक के कारण मनुष्य अहंकार, ममता, राग, द्वेष, स्पर्धा तथा मोह के जाल में उलझ जाता है। यही मानसिक अवस्थाएँ आगे चलकर विविध प्रकार के दुःखों का कारण बनती हैं। अतः सांख्यदर्शन में अविवेक का निवारण ही दुःखनिवृत्ति का प्रथम चरण माना गया है।[31]

(ख) पुरुष–प्रकृति अभेदबुद्धि

सांख्यदर्शन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त पुरुष और प्रकृति का भेदज्ञान है। पुरुष चेतन सत्ता है, जबकि प्रकृति अचेतन एवं परिवर्तनशील तत्त्व है। दोनों के पारस्परिक संयोग से ही संसार की विविध गतिविधियाँ सम्पन्न होती हैं।[32]

ईश्वरकृष्ण के अनुसार पुरुष का प्रकृति के साथ सम्बन्ध वास्तविक नहीं, बल्कि उपाधिजन्य है। पुरुष स्वयं किसी प्रकार के परिवर्तन से प्रभावित नहीं होता, किन्तु प्रकृति के विकारों को अपना समझ लेने के कारण वह बन्धन तथा दुःख का अनुभव करता है।[33]

सांख्यकारिका में कहा गया है कि प्रकृति पुरुष के अनुभव तथा मोक्ष दोनों के लिए कार्य करती है।[34]

संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः□ [35]

अर्थात् वास्तव में पुरुष न बँधता है, न मुक्त होता है और न ही संसार में भ्रमण करता है। प्रकृति ही विविध आश्रयों के माध्यम से बन्धन, संसार तथा मोक्ष का अनुभव कराती है।

यह सिद्धान्त सांख्यदर्शन की अद्वितीय दार्शनिक सूक्ष्मता को अभिव्यक्त करता है। यहाँ दुःख का कारण बाह्य वस्तुएँ नहीं, बल्कि उनके प्रति उत्पन्न मिथ्याज्ञान है।

(ग) अहंकार एवं आसक्ति

अहंकार सांख्यदर्शन के पञ्चविंशति तत्त्वों में एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। अविवेक के कारण उत्पन्न अहंकार मनुष्य को यह विश्वास दिलाता है कि शरीर, मन, बुद्धि, परिवार, सम्पत्ति तथा सामाजिक प्रतिष्ठा ही उसका वास्तविक स्वरूप है।[36]

अहंकार के साथ ही आसक्ति उत्पन्न होती है। मनुष्य जिन वस्तुओं को अपना मान लेता है, उनके प्रति राग विकसित हो जाता है। जब वे वस्तुएँ नष्ट होती हैं अथवा उनसे वियोग होता

---

[30] डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग–2, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2013, पृ. 301
[31] आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2016, पृ. 198
[32] भारतीय दर्शन : आलोचन और डॉ. चन्द्रधर शर्मा, अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2015, पृ. 171
[33] ''तस्मान्न बध्यतेऽसौ न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्
[34] वाचस्पति मिश्र, तत्त्वकौमुदी, पृ. 34
[35] विज्ञानभिक्षु, सांख्यप्रवचनभाष्यम्, पृ. 52
[36] डॉ. राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग– 2, पृ. 304

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

है, तब दुःख की अनुभूति होती है। इसी प्रकार प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है, जो मानसिक अशान्ति को जन्म देता है।[37]

सांख्यदर्शन के अनुसार राग और द्वेष दोनों ही प्रकृति के गुणों के परिणाम हैं। पुरुष इनसे सर्वथा परे है। किन्तु जब तक विवेकज्ञान उत्पन्न नहीं होता, तब तक मनुष्य इन मानसिक अवस्थाओं को अपना स्वरूप मानकर क्लेशों से ग्रस्त रहता है।[38]

(घ) त्रिगुणात्मक प्रकृति का प्रभाव

सांख्यदर्शन में प्रकृति को त्रिगुणात्मक माना गया है। सत्त्व, रजस् तथा तमस् इसके तीन मूलभूत गुण हैं। सम्पूर्ण जगत् तथा मानवीय व्यक्तित्व इन्हीं गुणों के विभिन्न संयोगों से निर्मित होता है।[39] सत्त्व प्रकाश, शुद्धि एवं प्रसन्नता का प्रतीक हैय रजस् चंचलता, स्पृहा तथा कर्मप्रवृत्ति का द्योतक हैय जबकि तमस् अज्ञान, आलस्य तथा मोह का कारण माना गया है। इन तीनों गुणों की पारस्परिक क्रिया से ही मनुष्य विविध मानसिक एवं शारीरिक अवस्थाओं का अनुभव करता है।[40] जब रजस् एवं तमस् की प्रधानता होती है, तब मनुष्य दुःख, असन्तोष, क्रोध तथा भ्रम से प्रभावित होता है। इसके विपरीत सत्त्वगुण की वृद्धि से विवेक, शान्ति, संतोष एवं आत्मचिन्तन की प्रवृत्ति विकसित होती है। किन्तु सांख्यदर्शन का लक्ष्य केवल सत्त्व की वृद्धि नहीं, बल्कि समस्त गुणों से परे पुरुष के स्वरूप का साक्षात्कार है।

3. सांख्यदर्शन में दुःखत्रय–निवृत्ति के उपाय

सांख्यदर्शन का मूल उद्देश्य केवल दुःखों का वर्णन करना नहीं है, अपितु उनकी आत्यन्तिक निवृत्ति का उपाय प्रस्तुत करना भी है। सांख्याचार्यों के अनुसार संसार में उपलब्ध भौतिक साधन, इन्द्रियसुख, सामाजिक प्रतिष्ठा अथवा लौकिक उपलब्धियाँ दुःखों की अस्थायी शान्ति तो प्रदान कर सकती हैं, किन्तु वे मनुष्य को स्थायी शान्ति एवं मोक्ष प्रदान करने में समर्थ नहीं हैं। अतः सांख्यदर्शन दुःखनिवारण के लिए ऐसे साधन का प्रतिपादन करता है, जो मनुष्य को जन्म–मरण, राग–द्वेष तथा अविद्याजन्य क्लेशों से सर्वथा मुक्त कर सके।[41]

सांख्यदर्शन में दुःखनिवारण के प्रमुख साधन निम्नलिखित हैं।

3.1 तत्त्वज्ञान : दुःखनिवारण का आधार

सांख्यदर्शन में तत्त्वज्ञान को समस्त दुःखों की निवृत्ति का मूलाधार माना गया है। सांख्याचार्यों के अनुसार जब तक मनुष्य जगत, प्रकृति, पुरुष तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में

---

[37] डॉ. उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन का इतिहास, पृ. 23

[38] ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, कारिका–20, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 2018, पृ. 18

[39] वाचस्पति मिश्र, तत्त्वकौमुदी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2017, पृ. 41

[40] वही, पृ. 42

[41] डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग– 2, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2013, पृ. 309

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं करता, तब तक वह बन्धन एवं दुःख की स्थिति में बना रहता है।[42] सांख्यदर्शन पञ्चविंशति तत्त्वों का प्रतिपादन करता है। इन तत्त्वों का सम्यक् ज्ञान साधक को यह समझने में सहायता करता है कि जो कुछ परिवर्तनशील है, वह प्रकृति का क्षेत्र है तथा जो अपरिवर्तनशील, चेतन एवं साक्षी है, वही पुरुष है। इस ज्ञान के अभाव में पुरुष स्वयं को प्रकृति के विकारों से अभिन्न मान लेता है। ईश्वरकृष्ण ने स्पष्ट किया है कि तत्त्वज्ञान के अभाव में मनुष्य निरन्तर जन्म–मरण, सुख–दुःख एवं मोह के चक्र में घूमता रहता है। तत्त्वज्ञान उत्पन्न होने पर साधक प्रकृति के समस्त व्यापारों को साक्षीभाव से देखने लगता है और उसके अन्तःकरण में वैराग्य, समत्व तथा आन्तरिक शान्ति का विकास होने लगता है।

3.2 विवेकख्याति : सांख्यदर्शन का परम साधन

सांख्यदर्शन में विवेकख्याति को दुःखत्रय की निवृत्ति का सर्वोच्च उपाय माना गया है। विवेकख्याति का अभिप्राय पुरुष एवं प्रकृति के भेद का अखण्ड, अविच्छिन्न एवं प्रत्यक्ष ज्ञान है। जब साधक इस तथ्य का अनुभव कर लेता है कि वह न शरीर है, न मन, न बुद्धि और न अहंकार, बल्कि शुद्ध, स्वतन्त्र एवं साक्षी पुरुष है, तभी वास्तविक मुक्ति की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।[43]

वाचस्पति मिश्र के अनुसार विवेकख्याति केवल बौद्धिक निष्कर्ष नहीं है, अपितु यह साधक की अन्तःचेतना में घटित होने वाली एक आध्यात्मिक अनुभूति है। इस अनुभूति के पश्चात् प्रकृति पुरुष के लिए अपना कार्य पूर्ण कर लेती है और उसके प्रति उदासीन हो जाती है।

सांख्यकारिका में कहा गया है।[44] तस्य हेतुरविद्या। तन्नाशे कैवल्यम्। यद्यपि यह सूत्ररूप अभिव्यक्ति उत्तरवर्ती परम्परा में अधिक स्पष्ट रूप से मिलती है, तथापि इसका मूल भाव सम्पूर्ण सांख्य साहित्य में निहित है कि अविवेक ही बन्धन का कारण है तथा विवेक ही मुक्ति का साधन है।[45] विवेकख्याति के उदय से साधक यह अनुभव करने लगता है कि समस्त सुख–दुःख, राग–द्वेष तथा मानसिक विकार प्रकृति के गुणों का खेल मात्र हैं। पुरुष उनसे सर्वथा असंग एवं अप्रभावित रहता है। यही अनुभूति दुःखनिवारण की वास्तविक अवस्था है।

3.3 वैराग्य एवं आसक्ति–क्षय

यद्यपि सांख्यदर्शन में योगदर्शन की भाँति साधना–पद्धति का विस्तृत प्रतिपादन नहीं मिलता, तथापि इसके सिद्धान्तों में वैराग्य का विशेष महत्त्व स्वीकार किया गया है। तत्त्वज्ञान एवं विवेकख्याति के परिणामस्वरूप साधक के भीतर स्वाभाविक वैराग्य उत्पन्न होता है।

---

[42] डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग– 2, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2013, पृ. 309
[43] सांख्यकारिका, कारिका–62
[44] सांख्यकारिका, कारिका–62
[45] विज्ञानभिक्षु, सांख्यप्रवचनभाष्यम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 2016, पृ. 71

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

यह वैराग्य संसार का परित्याग नहीं है, बल्कि संसार के प्रति यथार्थ दृष्टि का विकास है। साधक समझने लगता है कि भौतिक उपलब्धियाँ क्षणभंगुर हैं तथा उनसे स्थायी आनन्द की प्राप्ति सम्भव नहीं है। फलतः उसकी आसक्ति धीरे–धीरे समाप्त होने लगती है।[46]

सांख्यदर्शन के अनुसार दुःख का एक प्रमुख कारण वस्तुओं के प्रति मिथ्या स्वामित्व–बोध है। जब यह बोध समाप्त हो जाता है, तब मनुष्य सुख–दुःख, लाभ–हानि तथा जय–पराजय में समभाव का अनुभव करने लगता है। यह अवस्था दुःखत्रय की निवृत्ति की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण चरण मानी जाती है।[47]

3.4 कैवल्य की अवधारणा : सांख्यदर्शन का परम पुरुषार्थ

सांख्यदर्शन में कैवल्य को मानव जीवन का परम पुरुषार्थ एवं समस्त दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति की अवस्था माना गया है। अन्य भारतीय दर्शनों में जहाँ मोक्ष को ब्रह्मसाक्षात्कार, ईश्वरप्राप्ति अथवा निर्वाण के रूप में निरूपित किया गया है, वहीं सांख्यदर्शन में कैवल्य का तात्पर्य पुरुष की उस स्थिति से है, जिसमें वह प्रकृति के समस्त विकारों, गुणों तथा बन्धनों से पूर्णतया पृथक् होकर अपने शुद्ध, स्वतन्त्र एवं साक्षीस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।[48]

सांख्याचार्यों के अनुसार पुरुष वास्तव में कभी बन्धनग्रस्त नहीं होता, क्योंकि उसका स्वभाव नित्य, शुद्ध, बुद्ध एवं मुक्त है। तथापि अविवेकवश वह स्वयं को प्रकृति के गुणों से युक्त मान लेता है और इसी कारण जन्म, मरण, सुख, दुःख, मोह तथा क्लेशों का अनुभव करता है। जब विवेकज्ञान के माध्यम से पुरुष को अपने वास्तविक स्वरूप का बोध हो जाता है, तब वह प्रकृति के व्यापारों से असंग हो जाता है। यही अवस्था कैवल्य कहलाती है।[49]

ईश्वरकृष्ण सांख्यकारिका में कहते हैं।

"प्राप्ते शरीरभेदेऽपि तिष्ठत्येव विवेकतः।
संस्कारवशतः चक्रभ्रमिवद्धृतशरीरः।।"

इस कारिका का अभिप्राय यह है कि विवेकज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् भी पूर्व संस्कारों के कारण शरीर कुछ समय तक कार्य करता रहता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कुम्हार का चक्र पात्र निर्माण के पश्चात् भी कुछ समय तक घूमता रहता है। परन्तु ज्ञानी पुरुष इन क्रियाओं से स्वयं को असम्बद्ध अनुभव करता है।[50]

---

[46] वाचस्पति मिश्र, तत्त्वकौमुदी, पृ. 47

[47] डॉ. चन्द्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन : आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2015, पृ. 178

[48] बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2016, पृ. 207
सांख्यकारिका, कारिका–13

[49] विज्ञानभिक्षु, सांख्यप्रवचनभाष्यम्, पृ. 75

[50] विज्ञानभिक्षु, सांख्यप्रवचनभाष्यम्, पृ. 75

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

वाचस्पति मिश्र के अनुसार कैवल्य किसी नवीन वस्तु की प्राप्ति नहीं है, अपितु पुरुष के वास्तविक स्वरूप का आविर्भाव है। यह अवस्था उस दीपक के समान है जो वायु के अभाव में पूर्णतः स्थिर हो जाता है। कैवल्य में पुरुष न तो सुख की इच्छा करता है और न दुःख से भयभीत होता है। वह समस्त द्वन्द्वों से परे शुद्ध चौतन्यरूप में स्थित रहता है।[51] विज्ञानभिक्षु ने कैवल्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह ऐसी आध्यात्मिक स्थिति है जिसमें प्रकृति पुरुष के लिए अपने समस्त प्रयोजनों को पूर्ण कर लेती है और उसके प्रति पुनः कोई आकर्षण उत्पन्न नहीं करती। इस प्रकार सांख्यदर्शन में कैवल्य मोक्ष का पर्याय है, किन्तु यह मोक्ष ईश्वरकृपा पर आधारित न होकर आत्मज्ञान एवं विवेकख्याति का स्वाभाविक परिणाम है।[52]

4. सांख्यदर्शन की समकालीन प्रासंगिकता

भारतीय दार्शनिक परम्पराओं की प्रासंगिकता केवल उनके ऐतिहासिक महत्त्व तक सीमित नहीं है, अपितु उनकी शिक्षाएँ वर्तमान मानव जीवन की जटिल समस्याओं के समाधान में भी अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकती हैं। सांख्यदर्शन की दुःखत्रय, विवेकख्याति तथा कैवल्य सम्बन्धी अवधारणाएँ आधुनिक युग में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती हैं।[53]

4.1 मानसिक स्वास्थ्य एवं सांख्यदर्शन

वर्तमान समय में तनाव, अवसाद, असन्तोष, अकेलापन तथा अस्तित्वगत संकट विश्वव्यापी समस्याओं के रूप में उभर रहे हैं। भौतिक प्रगति के बावजूद मनुष्य के अन्तर्मन में शान्ति एवं संतुलन का अभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। ऐसी स्थिति में सांख्यदर्शन यह शिक्षा प्रदान करता है कि मनुष्य की अधिकांश समस्याओं का कारण बाह्य परिस्थितियाँ नहीं, बल्कि उनके प्रति उसकी मिथ्या दृष्टि है। यदि व्यक्ति पुरुष एवं प्रकृति के भेद को समझने का प्रयास करे तथा स्वयं को शरीर, मन एवं सामाजिक भूमिकाओं से परे साक्षीभाव में अनुभव करना सीखे, तो उसके भीतर मानसिक संतुलन, आत्मविश्वास एवं आन्तरिक प्रसन्नता का विकास सम्भव है। इस दृष्टि से सांख्यदर्शन आधुनिक मनोविज्ञान एवं परामर्श विज्ञान के लिए भी उपयोगी आधार प्रस्तुत करता है।

4.2 योगदर्शन के साथ सांख्य का सम्बन्ध

योगदर्शन और सांख्यदर्शन का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। योगदर्शन ने सांख्य के तत्त्वमीमांसात्मक आधार को स्वीकार करते हुए साधना–पक्ष का विकास किया है। जहाँ सांख्य विवेकज्ञान को मोक्ष का साधन मानता है, वहीं योगदर्शन चित्तवृत्तिनिरोध के माध्यम से उसी लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

पतञ्जलि ने कहा है–

---

[51] ईश्वरकृष्ण, सांख्यकारिका, कारिका– 1, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 2018, पृ. 3
[52] डॉ. उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन का इतिहास, हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2011, पृ. 247
[53] वाचस्पति मिश्र, तत्त्वकौमुदी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2017, पृ. 56

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।।

यह सूत्र सांख्यदर्शन की उस धारणा को व्यावहारिक रूप प्रदान करता है, जिसके अनुसार अन्तःकरण की शुद्धि एवं स्थिरता के बिना विवेकख्याति की प्राप्ति सम्भव नहीं है। अतः सांख्य और योग का समन्वित अध्ययन मानव जीवन के आध्यात्मिक उत्थान में विशेष सहायक सिद्ध हो सकता है।

4.3 समकालीन जीवन में विवेकख्याति की आवश्यकता

सांख्यदर्शन का सम्पूर्ण साधनामार्ग विवेकख्याति की अवधारणा पर आधारित है। वर्तमान युग में मनुष्य अभूतपूर्व भौतिक उन्नति के बावजूद मानसिक अशान्ति, अस्तित्वगत संकट, असन्तोष, प्रतिस्पर्धात्मक तनाव तथा मूल्यगत विघटन जैसी अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। ऐसी परिस्थितियों में सांख्यदर्शन की विवेकख्याति की संकल्पना केवल दार्शनिक विचार न होकर जीवन को संतुलित, सार्थक तथा आत्मानुभूति की ओर उन्मुख करने वाला व्यावहारिक साधन सिद्ध होती है।[54]

विवेकख्याति का तात्पर्य केवल सैद्धान्तिक ज्ञान से नहीं है, बल्कि उस स्थायी अन्तर्दृष्टि से है जिसके माध्यम से साधक पुरुष एवं प्रकृति के भेद को निरन्तर अनुभव करता है। जब मनुष्य यह समझने लगता है कि शरीर, मन, बुद्धि, प्रतिष्ठा, सम्पत्ति तथा सामाजिक सम्बन्ध परिवर्तनशील हैं और उसका वास्तविक स्वरूप इन सबसे परे शुद्ध साक्षी चेतना है, तब उसके भीतर जीवन की विषम परिस्थितियों के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण विकसित होता है।

आधुनिक समाज में व्यक्ति अपनी पहचान को बाह्य उपलब्धियों के साथ जोड़कर देखता है। परिणामस्वरूप सफलता मिलने पर अहंकार और असफलता मिलने पर हीनता, निराशा तथा अवसाद उत्पन्न हो जाते हैं। सांख्यदर्शन का विवेकज्ञान मनुष्य को यह शिक्षा देता है कि वह स्वयं को परिस्थितियों का भोक्ता न मानकर उनके साक्षी के रूप में अनुभव करे। यह दृष्टिकोण मानसिक संतुलन एवं आत्मसंयम के विकास में अत्यन्त सहायक हो सकता है।

सांख्यदर्शन का यह सिद्धान्त आधुनिक मनोविज्ञान की अनेक अवधारणाओं से भी साम्य रखता है। आत्मनिरीक्षण, भावनात्मक परिपक्वता, आत्मस्वीकृति तथा आन्तरिक जागरूकता जैसे विचार आज मनोचिकित्सा एवं व्यक्तित्व–विकास के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। सांख्यदर्शन इन्हीं तत्त्वों को दार्शनिक आधार प्रदान करता है।[55]

4.4 वैश्विक परिप्रेक्ष्य में सांख्यदर्शन की उपादेयता

वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व भौतिक समृद्धि के साथ–साथ मानसिक, सामाजिक तथा पारिस्थितिक संकटों का भी सामना कर रहा है। युद्ध, आतंकवाद, पर्यावरणीय असन्तुलन,

---

[54] डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग– 2, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2013, पृ. 319

[55] सांख्यकारिका, कारिका–64

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

सामाजिक विखण्डन तथा उपभोक्तावादी जीवनशैली ने मानव जीवन को अत्यधिक जटिल बना दिया है। ऐसी स्थिति में भारतीय दार्शनिक परम्पराओं की ओर विश्व समुदाय का आकर्षण निरन्तर बढ़ रहा है।

सांख्यदर्शन का महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि यह मनुष्य को बाह्य परिस्थितियों पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करने की अपेक्षा अपने अन्तर्मन को समझने तथा परिष्कृत करने की प्रेरणा देता है। यह दर्शन मनुष्य को आत्मचिन्तन, वैराग्य, समत्व तथा विवेकपूर्ण जीवन–दृष्टि अपनाने का संदेश देता है। आज अनेक देशों में योग, ध्यान तथा भारतीय आध्यात्मिक परम्पराओं का अध्ययन केवल धार्मिक दृष्टि से नहीं, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य एवं जीवन–प्रबन्धन के प्रभावी साधनों के रूप में किया जा रहा है। सांख्यदर्शन योगदर्शन की दार्शनिक पृष्ठभूमि प्रदान करता हैय अतः इसकी शिक्षाएँ वैश्विक स्तर पर भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती हैं।[56]

सांख्यदर्शन की दुःखमीमांसा मानव जीवन की सार्वभौमिक समस्याओं से सम्बद्ध है। जाति, भाषा, धर्म, संस्कृति अथवा राष्ट्रीयता के भेद से परे प्रत्येक मनुष्य दुःख, भय, असुरक्षा तथा अस्थिरता का अनुभव करता है। सांख्यदर्शन इन समस्याओं का समाधान आत्मज्ञान, विवेकख्याति तथा पुरुष–प्रकृति भेदज्ञान के माध्यम से प्रस्तुत करता है। यही इसकी सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक प्रासंगिकता है।

उपसंहार

भारतीय दार्शनिक परम्परा में सांख्यदर्शन का स्थान अत्यन्त विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण है। यह दर्शन मानव जीवन की मूल समस्या के रूप में दुःख को स्वीकार करते हुए उसकी आत्यन्तिक निवृत्ति के उपायों का अत्यन्त तार्किक, वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित प्रतिपादन करता है। सांख्यदर्शन का मूल प्रतिपाद्य दुःखत्रयाभिघात है, जो मानव जीवन की विविध प्रकार की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं प्राकृतिक पीड़ाओं का समग्र प्रतिनिधित्व करता है। सांख्यदर्शन के अनुसार दुःखों का मूल कारण अविवेक है, जिसके कारण पुरुष स्वयं को प्रकृति के गुणों, विकारों तथा उपाधियों के साथ अभिन्न मान लेता है। यही मिथ्याज्ञान मनुष्य को बन्धन, मोह, राग, द्वेष तथा पुनर्जन्म के चक्र में आबद्ध करता है। इस स्थिति से मुक्ति का एकमात्र साधन विवेकख्याति है, जिसके माध्यम से साधक पुरुष एवं प्रकृति के वास्तविक भेद को जानकर अपने शुद्ध चौतन्यस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यही अवस्था कैवल्य कहलाती है।[57]

सांख्यदर्शन का कैवल्य किसी बाह्य सत्ता की कृपा से प्राप्त होने वाला फल नहीं है, अपितु यह आत्मानुभूति एवं तत्त्वज्ञान की परिणति है। इस दृष्टि से सांख्यदर्शन भारतीय दर्शन की

[56] वाचस्पति मिश्र, तत्त्वकौमुदी, पृ. 63
[57] विज्ञानभिक्षु, सांख्यप्रवचनभाष्यम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 2016, पृ. 89

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

ज्ञानप्रधान परम्परा का उत्कृष्ट प्रतिनिधि है। वर्तमान समय में मानसिक तनाव, अस्तित्वगत संकट, मूल्यहीनता तथा जीवनगत असन्तुलन की परिस्थितियों में सांख्यदर्शन की शिक्षाएँ मानव समाज के लिए पुनः प्रासंगिक प्रतीत होती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि सांख्यदर्शन केवल प्राचीन भारतीय चिन्तन की एक ऐतिहासिक धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान एवं भावी मानव सभ्यता के लिए भी मार्गदर्शक दर्शन है।[58]

[58] डॉ. चन्द्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन : आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2015, पृ. 184